9

श्वेतकेतु के प्रसंग मे परिलक्षित मनोरुग्णता प्रतिरोधन के लिए परामर्श-आधारित उपचारपद्धति का औपनिषदिक प्रारूप

शिवम् चौधरी
(शोधच्छात्र),संस्कृत विभाग, दिल्ली वि श्वविद्यालय, नई दिल्ली
shivamchaudhary1002@gmail.com

डॉ. मोनिका कुँवर राठोड़
(सहायक-आचार्य)
संस्कृत विभाग, दिल्ली वि श्वविद्यालय, नई दिल्ली
monicarathorejnu04@gmail.com

सारांश

स्वास्थ्य सदैव से मानवता के लिए एक मूलभूत चिन्ता का विषय रहा है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी सदैव विमर्श का केन्द्रीय आयाम रहा है। हाल के दशकों में मानसिक स्वास्थ्य-संबंधी असंतुलनों में तेजी से हुई अप्रत्याशित वृद्धि यह आवश्यकता इंगित करती है कि इन समस्याओं के निवारण हेतु समग्र, एकीकृत एवं समुदाय-आधारित उपचारपद्धति अनिवार्य है। आत्म-साक्षात्कार (Self-realization) एवं सचेतनता (Mindfulness) पर केन्द्रित परामर्श-आधारित उपचारपद्धति (counseling-based intervention) एक संभावनापूर्ण वैकल्पिक माध्यम के रूप में उभर रही है, जिसके अनुकूल परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार की पद्धति के लिए अपेक्षित विधियों का भण्डार वैदिक साहित्य में विद्यमान है। मन के नियमन एवं संयमन की धारणा वैदिक वाङ्मय में निरन्तर प्रतिपादित हुई है, जिसका उदाहरण शिवसंकल्प सूक्त एवं उत्तरवर्ती उपनिषदिक ग्रन्थों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित श्वेतकेतु का प्रसंग मनोचिकित्सात्मक दृष्टि से विश्लेषित

©Indira Gandhi National Open University

किया जा सकता है, जिसमें श्वेतकेतु को मानसिक रूप से विचलित व्यक्ति एवं उद्दालक को उसके परामर्शदाता (counselor) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्वेतकेतु निराशा के साथ-साथ अभिमान से भी ग्रसित है। इन दोनों अवस्थाओं में उद्दालक उसे प्रेरक संवाद की प्रक्रिया से उबारते हैं एवं उसे अद्वैत वेदान्त का एक महावाक्य “तत् त्वम् असि” प्रदान करते हैं। यह प्रसंग वह कार्यपद्धति प्रस्तुत करता है जिसके माध्यम से व्यक्ति मानसिक विघटन एवं अस्थिरता की परिस्थिति से मार्ग निकाल सकता है। यही पद्धति भारतीय परम्परा के अन्य प्रधान ग्रन्थों, जैसे रामायण एवं महाभारत में भी परिष्कृत रूप में दृष्टिगोचर होती है। यह शोध-पत्र मुख्य रूप से श्वेतकेतु के प्रसंग के आलोक में आत्म-साक्षात्काराधारित परामर्श-पद्धति का मनोवेदना (mental suffering) के प्रभावी निवारण के रूप में अध्ययन करेगा जिससे इसकी स्थायी उपयोगिता एवं सांस्कृतिक प्रासंगिकता की पुष्टि की जा सके।

कुंजी शद्ब

मनोरूग्णता, परामर्श, उपदेश, स्वास्थ्य, उपचारपद्धति

1. भूमिका

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥[1]

स्वास्थ्य, जो जीवन के संरक्षण का मूलाधार है, सदैव से मानवता के लिए एक मूलभूत चिन्ता का विषय रहा है। मानव सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था से ही आदिमानव का खाद्य सामग्रियों का अधिग्रहण करना इसका मूर्धन्य प्रमाण है। यद्यपि वे “स्वास्थ्य” एवं “क्षेम” जैसे परिष्कृत शद्बों से परिचित नहीं था, एवंपि शरीर एवं जीवन की रक्षा उनके समस्त प्रयत्नों के केन्द्र में था।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) स्वास्थ्य को “a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease or infirmity”[2] के रूप में परिभाषित करता है। यह परिभाषा स्वास्थ्य को एक समग्र एवं बहुआयामी अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार का दृष्टिकोण हमें प्राचीन भारतीय

---

[1] चरक संहिता सूत्रस्थयन, १.१५

[2] https://www.who.int/data/gho/data/major-themes/health-and-well-being

©Indira Gandhi National Open University

आयुर्वैदिक ग्रन्थों में भी स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान में कहा गया है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रीयः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥[3]

"समान दोषवाला, समान (न मन्द, न तीक्ष्ण, न विषमाग्नि) अग्नि वाला, समान धातु, समान मल वाला, समान क्रिया वाला, प्रसन्न आत्मा-इन्द्रिय-मन वाला पुरुष स्वस्थ कहा जाता है" (अत्रिदेव, १८६०)।इसके विपरीत, शरीर की सम्यक् अवस्था का अभाव एवं दुःख से युक्त स्थिति को रोग कहा जाता है। यह शरीर, मन अथवा दोनों को प्रभावित कर सामान्य जीवन-प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में दुःख के तीन भेदों- आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक में से रोग को आध्यात्मिक दुःख के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। परंपरा के अनुसार यह चार प्रकार के माने गए हैं-

तद्दुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते।
ते चतुर्विधा आगन्तवः शारीराः मानसिकाः स्वाभाविकाश्चेति॥[4]

ये हैं- आगन्तुक (आघातजन्य), शारीरिक, मानसिक एवं स्वाभाविक। प्रस्तुत शोध विशेष रूप से मानसिक रोगों पर केन्द्रित है एवं छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित श्वेतकेतु के प्रसंग के आलोक में परामर्श-आधारित उपचारपद्धति (counseling based intervention) के द्वारा आत्म-साक्षात्कार को मानसिक रोगों की चिकित्सा की एक प्रभावी सम्भावना के रूप में अन्वेषित करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य ऐसी मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति जीवन के तनावों का सम्यक् रूप से सामना कर सके एवं समाज में रचनात्मक योगदान दे सके "state of mental well being that enables individuals to cope with life's stresses and contribute to their communities"[5]।आधुनिक समय में यह 1946 के अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्मेलन के पश्चात् चिकित्सा के एक

---

3 सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान, १५.४१

4 सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान, १.२३-२४

5 https://www.who.int/health-topics/mental-health#tab=tab_1

Volume 5, Issue 1, 2026, p.90- 117, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

पृथक शाखा के रूप में उभरकर सामने आया[6] परंतु आयुर्वेद ने सदा से मानसिक रोगों को व्याख्यायित किया है एवं असंतुलित भावनाओं को इसका मूल कारण माना है। कुंज लाल भिषग्रत्न (1907, p. 10) में लिखते हैं "Excessive anger, grief, fear, joy, despondency, envy, misery. pride, greed, lust, desire, malice, etc. are included within the category of mental distempers"।वैश्विक[7] एवं भारतीय[8] आँकड़ों के अनुसार चिंता, अवसाद एवं सम्बद्ध विकारों में कोविड-19 महामारी के पश्चात् तीव्र वृद्धि देखी गई है। परिणामस्वरूप आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में औषधोपचार के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं माइंडफुलनेस-आधारित उपायों का समन्वय बढ़ता जा रहा है।[9]

वैदिक एवं उत्तरवर्ती शास्त्रीय परंपरा में ऐसी पद्धतियों का भण्डार है, जिन्हें परामर्श-आधारित उपचारपद्धति के रूप में समझा जा सकता है। यजुर्वेद के शिवसंकल्प सूक्त में मन को समस्त ज्ञान, कर्म एवं अनुभव का सूक्ष्म आधार माना गया है एवं यह प्रार्थना की गई है कि मन कल्याणकारी संकल्प से युक्त हो एवं हानिकारक प्रवृत्तियों से दूर रहे। इस सूक्त का निहितार्थ है कि मन यदि चंचल एवं भ्रमणशील अज्ञान के अधीन रहता है दुःखों के अनुभव का कारण बनता है, परंतु वही मन यदि धर्माधीन शुद्ध संकल्प से युक्त हो जाए तो मोक्ष का साधन बन सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मानसिक स्वास्थ्य का एक मौलिक आधार प्रस्तुत करता है, जहाँ मानसिक क्षेम मन के प्रशिक्षण, एकाग्रता एवं नैतिक शुद्धि के साथ अटूट रूपेण जुड़ा हुआ है। परिणामस्वरूप शनैः शनैः मन आत्म-बोध में स्थिर हो जाता है एवं समभाव को बढ़ावा देता है जो कई प्रकार की भावनात्मक अशांति का प्रतिकार करने में सक्षम है।

---

[6] Bertolote J. The roots of the concept of mental health. World Psychiatry. 2008;7(2):113-6. doi: 10.1002/j.2051-5545.2008.tb00172.x. PMID: 18560478; PMCID: PMC2408392. https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles

[7] https://www.who.int/news/item/02-03-2022-covid-19-pandemic-triggers-25-increase-in-prevalence-of-anxiety-and-depression-worldwide
https://www.unicef.org/on-my-mind

[8] Murthy RS. National mental health survey of India 2015–2016. Indian J Psychiatry 2017;59:21-6.
Mental Health and Well-being of School Students A Survey, 2022
https://ncert.nic.in/pdf/Mental_Health_WSS_A_Survey_new.pdf

[9] Spirituality Can Help Protect Mental Health (Lisa Miller's Research)
https://www.psychologytoday.com/us

©Indira Gandhi National Open University

उपनिषद् इस वैदिक अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए यह प्रतिपादित करते हैं कि आत्म-साक्षात्कार समस्त प्रकार के दुःखों का समाधान है।[10] उपनिषद् साहित्य सर्वत्र इस समाधान को उपदेश के माध्यम से ही प्रस्तुत करता है, जिसे आधुनिक संदर्भ में परामर्श-आधारित उपचारपद्धति के रूप में समझा जा सकता है। उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ भी इसी दिशा में संकेत करता है। इसी पृष्ठभूमि में छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित श्वेतकेतु के प्रसंग का अवलोकन किया जा सकता है।

4. श्वेतकेतु के प्रसंग के माध्यम से औपनिषदिक परामर्श-आधारित उपचारपद्धति का प्रारूप

छान्दोग्य उपनिषद् के पञ्चम अध्याय के तृतीय खंड से षष्ठ अध्याय पर्यंत श्वेतकेतु की कथा का केवल आत्म-साक्षात्कार की एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में ही नहीं, अपितु एक ठोस चिकित्सकीय प्रक्रिया के रूप में भी अवलोकन किया जा सकता है, जो हताशा, आहत स्वाभिमान एवं अतिशय गर्व जैसे मानसिक विकारों का समाधान परामर्श-आधारित उपचारपद्धति के माध्यम से करती है। उद्दालक एवं श्वेतकेतु के बीच हुए पिता-पुत्र संवाद का परामर्शदाता-परामर्शार्थी (counselor- seeker) संवाद के रूप में अवलोकन किया जा सकता है। यह दर्शाता है कि कैसे उपदेश के माध्यम से गृहीत आत्म-ज्ञान विकृत भावनात्मक स्थितियों को सम्यक् कर सकता है एवं मनोवैज्ञानिक संतुलन पुनर्स्थापित कर सकता है।

4.1 समस्या की प्रस्तुति: अपमान, आहत स्वाभिमान एवं भ्रम

श्वेतकेतु पाञ्चालों की सभा में पहुँचता है जहाँ जीवल पुत्र राजा प्रवाहण उसके समक्ष पाँच प्रश्नों को रखते हैं। वे प्रश्न थे- मृत्यु के पश्चात् जीव की गति क्या होती है, वह पुनः इस लोक में किस प्रकार आता है, देवयान-पितृयान के विलग होने का स्थान क्या है, पितृलोक भरता क्यों नहीं है एवं पाँचवीं आहुतिके हवन कर दिये जानेपर सोमघृतादि रस 'पुरुष' संज्ञाको कैसे प्राप्त होते हैं? श्वेतकेतु इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने में पूर्णतः

---

[10] यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।। (ईशावास्योपनिषद्, ७)
यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति।। (केनोपनिषद्, ९)
निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।। (कठोपनिषद्, १.३.१५)

असमर्थ रहता है।[11] फलस्वरूप राजा द्वारा उसके पूर्ण रूपेण शिक्षित होने के दावे को मिथ्या सिद्ध कर देता है।[12] इससे उसके आत्म-प्रतिष्ठा को गहरी चोट पहुँचती है एवं वह अपमान, क्रोध एवं लज्जा से ग्रस्त होकर पिता के पास लौटता है।

श्वेतकेतु के इस प्रकार के तत्काल प्रतिक्रिया के कई मनोवैज्ञानिक पहलू हैं। वह अपनी अज्ञानता स्वीकारने के स्थान पर पिता को दोष देता है- "अनुशिष्य वाव किल मा भगवान-ब्रवीदनु त्वाशिषमिति"[13] इस प्रकार की प्रतिक्रिया सामान्यतः परिदृष्ट आत्मरक्षा-तंत्र (defense mechanisms) को दर्शाती है जहाँ स्वयं को जिम्मेदारी से बचाने के लिए दूसरे पर दोषारोपण कर दिया जाता है। श्वेतकेतु समान प्रतिक्रिया तब भी प्रेषित करता है जब वह गुरुकुल पुनः भेज दिए जाने के डर से परम सत्य का ज्ञान प्राप्त न कर पाने का दोष अपने गुरु पर मढ़ता है।[14] ऐसी परिस्थिति में उसके अंतर्मन में हताशा, क्रोध एवं शर्मिंदगी से सम्मिश्रित मनोवेग विकट रूप धारण कर चुका है। चिकित्सकीय दृष्टिकोण से यह प्रतिक्रियाएँ एक ऐसे रोगी के समानांतर हैं जिसने बाहरी मान्यताओं के इर्द-गिर्द अपनी पहचान बनाई है एवं अचानक उसे अपर्याप्तता के साक्ष्यों का सामना करना पड़ता है, जिससे उसके स्वाभिमान को गंभीर चोट पहुँचती है।

4.2 प्रारम्भिक उपचारपद्धति: उद्दालक द्वारा भावनात्मक संधारण

उद्दालक की तात्कालिक प्रतिक्रिया एक आदर्श परामर्शदाता के उदाहरण को प्रस्तुत करती है। वे न तो प्रतिवाद करते हैं, न ही श्वेतकेतु को लज्जित करते हैं, बल्कि शांत भाव से स्वीकार करते हैं कि वे स्वयं भी उस ज्ञान से अपरिचित थे जिस कारण से वे श्वेतकेतु को इन विशिष्ट प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ नहीं बना पाए।[15] इस विनम्रता के कई चिकित्सीय प्रभाव हैं-

---

[11] वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति...वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति ? नैव भगव इति॥ (छान्दोग्य उपनिषद्, ५.३.२-३)

[12] अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथँसोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति। (वही, ५.३.४)

[13] वही

[14] न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति...(वही, ६.१.७)

[15] यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति। (वही, ५.३.५)

- यह अज्ञानता को असफलता का पर्याय न मानकर उसे एक सार्वजनिक समस्या के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। श्रेष्ठ एवं बुद्धिजीवी व्यक्ति भी सार्वजनिक तौर पर अपनी अज्ञानता या कमी को स्वीकार कर सकते हैं। उद्दालक श्वेतकेतु से निश्चित रूपेण श्रेष्ट हैं परंतु वे अपनी अज्ञानता से शर्मिंदा या लज्जित नहीं हैं अपितु उन्हे इसका सकारात्मक भास है जो भविष्य में उन्हें ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इसके प्रत्यक्ष प्रभाव को श्वेतकेतु की बाद की प्रतिक्रियाओं में आए सुधार के रूप में देखा जा सकता है।
- उद्दालक श्वेतकेतु द्वारा दोषारोपण से बिना आहत हुए बुद्धिमत्ता से सम्पूर्ण परिस्थिति को नियंत्रित करते हैं। वे अपने पुत्र के समान प्रतिक्रिया नहीं देते, जो इस पूरी परिस्थिति में भावनात्मक तीव्रता को कम करने में सहायक होता है।
- उद्दालक का स्थिर एवं विचारशील स्वभाव पूरी परिस्थिति को दोषारोपण से पुनर्निर्देशित कर उसे जिज्ञासापूर्ण अनुसंधानात्मक मोड़ प्रदान करता है। इससे अंततः नकारात्मक मानसिक प्रवृत्तियाँ जैसे, "आपने मुझे विफल कर दिया→ या “मैं विफल हो गया” इत्यादि चर्चा के केंद्र से हटकर सकारात्मक मानसिक प्रवृत्तियाँ जैसे, "ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें हम दोनों को वास्तव में समझने की आवश्यकता है→ या “हम निश्चित रूपेण ज्ञानार्जन का प्रयास करेंगे” इत्यादि चर्चा के केंद्र में आ जाते हैं।

इस स्थान पर, परामर्श-आधारित उपचारपद्धति भावनात्मक नियंत्रण के रूप में प्रकट होता है। उद्दालक श्वेतकेतु की विकट मनोदशा को समझकर उसे अभिव्यक्ति का अवकाश प्रदान करते हैं, स्वयं के ज्ञान की सीमाओं को स्वीकार करते हैं एवं समाधान की ओर बढ़ने की जिम्मेदारी लेते हैं। इस प्रकार वे इस परिस्थिति को दीर्घकालिक कड़वाहट या निराशा में बदलने से रोकते हैं। उद्दालक अपनी अज्ञानता को छिपाने के लिए बनावटी उत्तर नहीं देते अपितु स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए पंचाल दरबार में जाते हैं, वहाँ प्रवाहण[16] से उन पांचों प्रश्नों के उत्तर को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं एवं अंततः वैश्वनार के सम्पूर्ण एवं सटीक ज्ञान के लिए अश्वपति[17] के पास जाते हैं। यहाँ परामर्श के क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य परिलक्षित है। यह दर्शाता है कि

[16] कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव।। (वही, ५.३.६)
[17] महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति।। (वही, ५.११.३)

©Indira Gandhi National Open University

परामर्शदाता को पहले स्वयं में स्पष्ट एवं प्रामाणिक ज्ञान होना चाहिए। यह अवस्था आधुनिक मनोचिकित्सा में प्रशिक्षण एवं पर्यवेक्षण के समकक्ष है।

उद्दालक की ज्ञानार्जन की इच्छा परामर्शदाता के रूप में उनके व्यक्तित्व के कई बिंदुओं पर प्रकाश डालती है:

- पात्रता: किसी दूसरे को मार्गदर्शन करने से पहले, व्यक्ति को पहले स्वयं में स्पष्ट एवं एकीकृत अंतर्दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए।
- अहंकारहीन स्वभाव: ज्ञान प्राप्ति के लिए शिक्षक के चरणों में बैठने में कोई शर्मिंदगी नहीं होनी चाहिए। उद्दालक कई अन्य बुद्धिजीवियों के साथ अश्वपति की शरण में वैश्वानर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने जाते हैं। यह दर्शाता है कि सत्य की खोज को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती है।
- उत्तरदायित्व: उद्दालक अपने पुत्र की परेशानी को इतनी गंभीरता से लेते हैं कि अपनी आध्यात्मिक यात्रा को फिर से शुरू करते हैं। यह श्वेतकेतु के प्रति उनकी चिंता को दर्शाता है।

यह प्रारम्भिक चरण उस स्थिति के समान है जिसमें कोई चिकित्सक प्रशिक्षण एवं पर्यवेक्षण की प्रक्रिया से गुजरता है। एक नैतिक परामर्शदाता वह ज्ञान प्रदान नहीं करता जिसे उसने स्वयं पूरी तरह आत्मसात न किया हो। वैश्वानर का ज्ञान यह स्पष्ट करता है कि आत्म-ज्ञान के लिए एक ऐसी एकात्मक दृष्टि आवश्यक है जो आंशिक एवं खण्डित दृष्टिकोणों से परे हो, ठीक उसी प्रकार जैसे हाथी के केवल कुछ अंगों को स्पर्श करने वाले अंधे व्यक्ति का उसे ही सम्पूर्ण हाथी समझ लेना पर्याप्त नहीं होता है। जो लोग आत्मन् को स्वयं से पूर्णतः पृथक कोई वस्तु मानते हैं, वे उसे "जानते" तो हैं, परन्तु वास्तव में नहीं जानते। यह आगे चलकर उद्दालक के द्वारा प्रयोग की गई उस पद्धति की पूर्वसूचना देता है जिसे वे श्वेतकेतु पर लागू करेंगे, जहाँ उसे आंशिक, केवल वैचारिक ज्ञान से उठाकर एक समन्वित आत्म-ज्ञान की ओर अग्रेसित किया जाएगा।

4.3 दंभ से साक्षात्कार एवं परिप्रेक्ष्य परिवर्तन

वैशवानार आत्मा का गहन ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् उद्दालक अपने पुत्र को औपचारिक रूप से परामर्श प्रदान करने की दिशा में उन्मुख होते हैं। गुरुकुल से वेदों का पूर्णाधिपत्य प्राप्त कर लौटा श्वेतकेतु स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है। उद्दालक उसमे आए हुए

दंभ का अवलोक करते हैं। आत्मज्ञानी के व्यक्तित्व से पूर्णतः विपरीत इस प्रकार के अभिमानपूर्ण, दर्पयुक्त एवं विनय-शून्य व्यक्तित्व से वे चिंतित होते हैं। उनकी यह दृष्टि मात्र नैतिक आलोचना नहीं है; अपितु यह एक निदानात्मक निरीक्षण है। उनका प्रथम चिकित्सकीय कदम एक प्रश्न के रूप में हमारे समक्ष आता है जो श्वेतकेतु के मन में विकसित स्वाभिमान पर प्रहार करता है। वे श्वेतकेतु से पूछते हैं कि "हे सोम्य ! तू जो ऐसा महामना, पण्डितम्मन्य एवं अविनीत है सो क्या तूने वह आदेश पूछा है? जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है एवं अविज्ञात विशेषरूप से ज्ञात हो जाता है।"[18]

तत्पश्चात् उद्दालक उसे ब्रह्म-विद्या या आत्मज्ञान का उपदेश प्रदान करते हैं। यह केवल एक दार्शनिक उपदेश या चर्चा नहीं है; मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यह श्वेतकेतु को ज्ञान का एक नवीन मापदण्ड प्रदान करता है जिससे अंततः उसके परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन आता है। पाठन सामग्री की बहुलता, उसे कंठस्त करने एवं उससे प्राप्त सामाजिक प्रशंसा से ज्ञान एवं शिक्षा को नापने के बजाय, उद्दालक ज्ञान की एक ऐसे रूप को श्वेतकेतु के समक्ष रखते हैं जिसके मूल में अनुभव है। यह रचनात्मक दृष्टिकोण श्वेतकेतु की अभिमानपूर्णता पर सीधे आघात करता है एवं यह दर्शाता है कि उसका स्वयं को "सुशिक्षित→ मानना कमज़ोर आधार पर अवलम्बित है।

ज्ञान के ऐसे रूप के प्रति श्वेतकेतु की विस्मयपूर्ण प्रतिक्रिया[19] उसे एक अनुसंधाता की स्थिति में स्थापित करती है। उल्लेखनीय है कि यहाँ श्वेतकेतु तटस्थ अनुसंधाता नहीं है, अपितु बारह वर्षों के वैदिक अध्ययन के पश्चात् एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक संरचना वाला व्यक्ति है जो अपनी विद्वत्ता को लेकर दंभयुक्त है, विनम्रशून्य है एवं अपनी शिक्षा को पूर्ण मानने वाला है। यह अभिमान मात्र नैतिक दोष नहीं अपितु यह श्वेतकेतु का स्वयं के बारे में एक विकृत संकल्पना है, जहाँ उसकी पहचान अर्जित ज्ञान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा पर अवलम्बित है। यह प्रसंग चिकित्सकीय प्रक्रिया में सहभागिता का प्रारम्भिक बिन्दु चिह्नित करता है। इस स्तर पर हम कह सकते हैं कि परामर्शदाता रोगी का बिना अपमान किए उसके दंभ को विदीर्ण कर परिप्रेक्ष्य परिवर्तन करने में

[18] श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ।। (वही, ६.१.२)
येनाश्रुतँश्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति। (वही, ६.१.३)
[19] कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति।। वही

सफल रहा है, जो इस प्रकार के विकृत मनःस्थिति के उपचार हेतु अपरिहार्य भावनात्मक परिवर्तन है।

4.4 संज्ञानात्मक पुनर्संरचना के लिए उपमानों का अनुप्रयोग

उद्दालक सुस्पष्ट एवं ठोस उपमानों की एक श्रृंखला का अनुप्रयोग करते हैं जिसमे मृत्तिका-घट[20], स्वर्ण-आभूषण[21], लोहा[22], दही एवं भोजन[23], बीज[24], वृक्ष[25], नदी[26], मधु[27], लवण मिश्रित जल[28] इत्यादि के माध्यम से वे श्वेतकेतु की आत्मा संबंधी अज्ञान का व्यवस्थित रूप से निवारण करते हैं।

इन सभी उपमानों में से मृत्तिका-घट अत्यंत महत्वपूर्ण है। उद्दालक बताते हैं कि मिट्टी के एक ढेले को जान लेने से, व्यक्ति उसके सभी उत्पादों, जैसे - बर्तन, घड़ा इत्यादि को प्रभावी ढंग से जान सकता है।[29] ऐसा इसलिए है क्योंकि बर्तन, घड़ा इत्यादि मृत्तिका के रूपांतरण मात्र हैं, वास्तव में, वे मृत्तिका के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं। आभासित विविधता एक ही पदार्थ पर मूलतः आधारित होता है। समान तर्क लोहे, सोने एवं उनसे बने वस्तुओं एवं आभूषणों पर भी लागू होता है। दार्शनिक रूप से यह भौतिक कारण एवं कार्य के एकत्व को परिलक्षित करता है परंतु मनोवैज्ञानिक रूप से यह संज्ञानात्मक पुनर्गठन के रूप में कार्य करता है- यह सामान्य अवधारणा को चुनौती देता है जो द्वैत को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार करता है।

श्वेतकेतु का संदेह कि "एक वस्तु के ज्ञान से दूसरे वस्तु का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है→ को स्पष्ट रूप से संबोधित किया गया है। उद्दालक स्पष्ट करते हैं कि यह तभी

---

[20] वही, ६.१.४
[21] वही, ६.१.५
[22] वही, ६.१.६
[23] वही, ६.६.१-२
[24] वही, ६.१२.१
[25] वही, ६.११.१
[26] वही, ६.१०.१
[27] वही, ६.९.१
[28] वही, ६.१३.१
[29] यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।। (वही, ६.१.४)

Volume 5, Issue 1, 2026, p.90- 117, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

असंभव प्रतीत होता है जब हम मान लेंते हैं कि कार्य कारण से पूर्णतः भिन्न है, परंतु वास्तव में, वे भिन्न नहीं अभिन्न हैं। जो बदलता है वह केवल नाम एवं रूप है, मूल पदार्थ नहीं। यह दो प्रकार के परामर्श तकनीकों को दर्शाता है:

- संज्ञानात्मक आपत्तियों को नज़रअंदाज़ करने के बजाय उन्हें सीधे संबोधित करना।
- पुराने वैचारिक अवधारणाओं को धीरे-धीरे अधिक व्यापक अवधारणाओं से बदलने के लिए तर्क एवं परिचित उदाहरणों का अनुप्रयोग करना।

श्वेतकेतु को पौनःपुन्येन इस सूक्ष्म ज्ञान से अवगत कराने से कि विभिन्न नाम एवं रूप एकत्व पर भाषागत एवं वैचारिक आवरण हैं[30], उद्दालक उस दृढ़ अवधारणा को निरंतर शिथिल करते हैं जो शरीर को भौतिक आत्मा का पर्याय मानता है। यही शिथिलीकरण चिकित्सीय परिवर्तन का केंद्र है। आत्मा की अधिक समन्वयशाली अवधारणा अपमान के प्रति अत्यंत संवेदनशीलता एवं बाह्य सत्यापन पर निर्भरता को काफ़ी हद तक कम् करने में प्रभावी होता है।

उद्दालक पुनः शक्तिशाली एवं अनुभवात्मक दृष्टान्तों का एक समूह का अनुप्रयोग करते हैं जिसको केवल बौद्धिक समझ से परे अंतर्दृष्टि उत्पन्न करने के उपकरण के रूप में समझा जा सकता है:

- **मधु एवं मधुमक्खियाँ का दृष्टांत**: मधुमक्खियों द्वारा इकट्ठा किया गया कई पेड़ों का रस, एक अविभाज्य शहद बन जाता है; रस अब व्यक्तिगत पहचान का दावा नहीं करते ("मैं इस पेड़ का रस हूँ")।यह दर्शाता है कि कैसे एकत्व की भावना अहंकार का नाश करती है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए यहाँ निहितार्थ यह है कि एक पृथक एवं अहंकार युक्त पहचान पर दृढ़ रहना एक संज्ञानात्मक विकृति है। स्वयं को एक विभु पदार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में देखना विनम्रता को बढ़ावा देता है एवं अहंकारी प्रवृत्तियों को कम करता है।
- **नदियाँ एवं समुद्र का दृष्टांत**: विभिन्न दिशाओं में बहने बाली नदियाँ अंततः समुद्र बन जाती हैं एवं अपना वैयक्तिक पहचान खो देती हैं। प्राणी सत् से उत्पन्न होते

[30] स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।। (वही, ६.१.४)
स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लौहमित्येव सत्यम्।। (वही, ६.१.५)
स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यम्।। (वही, ६.१.६)

©Indira Gandhi National Open University

हैं, सत् में लौट आते हैं, एवं फिर भी अज्ञानतावश इसे पहचानने में असफल हो जाता है। यह उपमान वैयक्तिक पहचान के साथ अत्यासक्ति को चुनौती देता है। स्वयं को एक सतत प्रवाह का हिस्सा समझने से व्यक्तिगत विफलता एवं मृत्यु से भय का दंश कम हो जाता है।

- **वृक्ष एवं प्राण का दृष्टांत**: जब श्वेतकेतु पित्राज्ञा से एक छोटे से बीज को तोड़ता है परंतु उसके अंदर कुछ भी प्रत्यक्षतः देख नहीं पाता, तो उद्दालक उस अदृश्य सूक्ष्म तत्त्व प्राण की ओर इशारा करता है जिससे विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है। यह मन को अदृश्य एवं सूक्ष्म आयामों (जैसे चेतना) की वास्तविकता की समझ विकसित करने के लिए प्रशिक्षित करता है जो स्थूल अवभासित वस्तुओं के अंतर्गत विद्यमान हैं।
- **लवण मिश्रित जल का दृष्टांत**: जल में घोला गया लवण आंखों से ओझल हो जाता है लेकिन स्वाद में जल के प्रत्येक घूँट में विद्यमान रहता है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि सूक्ष्म तत्व (सत्) प्रत्यक्ष रूप से न दिखने पर भी सभी वस्तुओं में व्याप्त है। कथित शून्यता या अर्थहीनता के कारण निराशा से पीड़ित किसी व्यक्ति के लिए, यह कल्पना अस्तित्व में एक अनदेखी, व्यापक सार्थकता की पुष्टि कर सकती है।
- **गांधार देश के व्यक्ति का दृष्टांत**: गांधार के उस व्यक्ति की स्थिति, जिसकी आंखों पर पट्टी बाँधकर छोड़ दिया गया हो, वह तभी अपने घर का रास्ता ढूंढना शुरू करता है जब कोई उसकी आंखों पर बँधे कपड़े को हटाता है एवं दिशा बताता है[31], शिक्षक की भूमिका के लिए एक सीधा रूपक प्रदान करता है। परामर्शदाता रोगी को मुक्ति की ओर नहीं ले जाता है, अपितु भ्रम को दूर करता है, रास्ता दिखाता है एवं अभ्यास एवं अंतर्दृष्टि के विभिन्न चरणों के माध्यम से उसकी क्रमिक यात्रा में सहायता करता है।

ये रूपक परिप्रेक्ष्य-परिवर्तन एवं संज्ञानात्मक पुनर्संरचना में चिकित्सीय अभ्यास की तरह काम कर सकते हैं। वे श्वेतकेतु को केवल सोचने के लिए नहीं अपितु अनुभव करने के लिए आमंत्रित करते हैं कि उसकी वास्तविक पहचान एवं मानसिक सुरक्षा एक गहरी एवं व्यापक वास्तविकता में निहित है। मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में, इस

[31] तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति... ।(वही, ६.१४.२)

©Indira Gandhi National Open University

तरह के अनुभवात्मक बदलाव चिंता, मृत्यु के भय एवं अत्यासक्ति को कम कर सकते हैं।

4.5 पुनरावृत्ति एवं धैर्य: चिकित्सीय नियमन एवं अनुक्रियाशीलता

उद्दालक के पूरे उपदेश में श्वेतकेतु द्वारा “भगवन्, पुनः बताइए” कई बार कहा जाता है एवं प्रत्येक बार उद्दालक उसे उसी निष्ठा से समझाते हैं जिस निष्ठा से उन्होंने उपदेश देना प्रारंभ किया था। पूरे आख्यान में वे नौ बार तत्त्वमसि की पुनरावृत्ति करते हैं। यह पुनरावृत्ति कई महत्वपूर्ण परामर्श संबंधी मूल्यों को प्रकट करता है:

- **धैर्य**: परामर्शदाता रोगी से तत्काल समझ को विकसित या उपदेशों के अनुपालन की इच्छा नहीं करता है; वह एक ही बिंदु को विभिन्न प्रकार से समझाने के लिए तैयार रहता है।
- **रोगी के समझ विकसित करने की गति का आदर**: उद्दालक द्वारा श्वेतकेतु के बार-बार अनुरोध का सम्मान किया जाता है, मूर्खता या जिद के रूप में नकारा नहीं जाता है।
- **संघर्ष को एक सामान्य घटना के रूप में देखना**: लंबे समय से दृढ़ हुए रोगी के पुराने परिप्रेक्ष्य में प्रबल परिवर्तन करना स्वाभाविक रूप से कठिन है; परामर्शदाता की पुनः व्याख्या करने की इच्छाशक्ति इसकी पुष्टि करती है।

चिकित्सीय दृष्टिकोण से, यह पुनरावृत्ति मनोचिकित्सा में कई सत्रों की तरह कार्य करता है जहाँ मुख्य विषयों पर कई बार गौर किया जाता है, उसे परिष्कृत किया जाता है एवं एकीकृत किया जाता है। यह स्थिर एवं निरंतर मार्गदर्शन के द्वारा प्रतिरोध एवं भ्रम को भेद सकने के सामर्थ्य को भी दर्शाता है।

4.6 “तत्त्वमसि” रूपी चिकित्सकीय सङ्कल्प

उद्दालक द्वारा नौ बार पुनरावृत्त वाक्यांश “वह सूक्ष्म तत्त्व ही आत्मा है, वही सत्य है, हे श्वेतकेतु! वह तू है”[32] इस पूरी प्रक्रिया में अंतिम उपचारात्मक उपदेश के रूप में हमारे समक्ष आता है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि आत्मा कोई दूरस्थ या रहस्यमय सत्ता है जो कहीं बाहर विद्यमान है, अपितु यह एक अत्यंत अंतरंग सूक्ष्म तत्त्व है जिससे

---

32 एतदात्म्यमिदँ सर्वं तत्सत्यँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो...{वही, ६.८.७ (आगे नौ बार पुनरावृत्त)}

Volume 5, Issue 1, 2026, p.90- 117, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

समस्त जीव उत्पन्न होते हैं, निवास करते हैं एवं जिसमें अंततः विलीन हो जाते हैं वही स्वयं श्वेतकेतु का अपना स्वरूप है। "तत्त्वमसि" का उपदेश अद्वैत वेदान्त के चार महावाक्यों में से एक है, जो इस दर्शन की सबसे मूल शिक्षाओं में गिना जाता है। इसके अर्थ को समझने की प्रक्रिया को सदानन्द योगी ने अपने ग्रंथ वेदान्तसार में विस्तार से निरूपण किया है। "तत्" शद्ब का वाच्यार्थ है- "अज्ञान आदि (अर्थात् अज्ञान रूप कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, एवं स्थूल शरीर) की समष्टि, इनसे उपहित एवं सर्वज्ञता आदि से विशिष्ट (ईश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट् या वैश्वानर नामक) चैतन्य, एवं इनसे अनुपहित शुद्ध चैतन्य की तपे हुए लौह-पिण्ड के समान अभिन्नता"[33]। इन "उपाधियों एवं इनसे उपहित चैतन्य का आधारभूत अर्थात अनुपहित (शुद्ध) चैतन्य", "तत्" पद का लक्ष्यार्थ होता है[34]।"त्वम्" पद का वाच्यार्थ "अज्ञान आदि (अज्ञान रूप कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, एवं स्थूल शरीर) की व्यष्टि, इनसे उपहित एवं अल्पज्ञता आदि से विशिष्ट (प्राज्ञ, तैजस एवं विश्व नामक) चैतन्य की तपे हुए लौह-पिण्ड के समान अभिन्नता"[35]। इन "उपाधियों एवं इनसे उपहित चैतन्य का आधारभूत अर्थात अनुपहित (शुद्ध) चैतन्य", "त्वम्" पद का लक्ष्यार्थ होता है[36]।इन दोनों शद्बों के गूढ़ अर्थों को "भाग-लक्षणा" या "जहदजहल्लक्षणा" के माध्यम से समझा जाता है। "तत्" एवं "त्वम्" का एकत्व तीन प्रकार के सम्बन्धों द्वारा स्थापित किया जाता है:

१. समानाधिकरण सम्बन्ध: जहाँ दोनों शद्बों का आश्रय एक ही तत्व माना जाता है;

२. विशेष्य–विशेषण सम्बन्ध: जहाँ दोनों एक-दूसरे के अर्थ को स्पष्ट या परिभाषित करते हैं; एवं

३. लक्ष्य–लक्षण सम्बन्ध: जहाँ दोनों शद्बों के लक्ष्यार्थ की समानता से उनका एकत्व सिद्ध होता है[37]।

इन महावाक्यों के अर्थज्ञान के कई मनोवैज्ञानिक प्रभाव देखे जा सकते हैं:

---

[33] वेदांतसार, २२
[34] वही
[35] वही
[36] वही
[37] वही, २३

यह आत्मा को अविनाशी अस्तित्व के रूप में जानकर मृत्यु के डर को कम कर सकता है जो रोगी के अस्तित्व संबंधी चिंताओं से प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ है।

यह आत्म-मूल्य को बाहरी मानकों (शिक्षा, स्थिति, शारीरिक शक्ति) से स्थानांतरित कर आंतरिक, अविनाशी सत्यता में स्थिर करता है।

यह गाढ़ मानसिक शांति प्रदान करता है क्योंकि आत्मज्ञान के पश्चात व्यक्ति बाहरी परिस्थितियों या आंतरिक संघर्षों से प्रभावित नहीं होता है। यह शांति सांसारिक उपलब्धियों से प्राप्त क्षणभंगुर आनंद के विपरीत नित्य आनंद का फलस्वरूप है-

आनंदं ब्राह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति।[38]

विषय एवं विषयी के भेद को मिथ्या जान यह व्यक्ति को द्वैत मनोभाव से निकालकर अद्वैत में स्थापित करता है-

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवभूद्विजानातः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत।।[39]

यदि एक ही आत्मा सभी में है, तो स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने या दूसरों के व्यवहार से आहात होने आधार कमजोर होते-होते अंततः नष्ट हो जाता है। “मैं” एवं “अन्य” की भावना का खत्म होने से एक ही तत्त्व का सभी प्राणियों में दर्शन होता है।

यह अंततः आत्मा के शरीर, मन एवं अहंकार से अनुपहित होने का अनुभव करवा कर दुःख को समूल नाश कर देता है। आत्मा के आनंदस्वरूप का अनुभव हो जाता है-

सर्वमात्मानम् पश्यति नैवं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति।[40]

तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।[41]

मनोरोग के परिप्रेक्ष्य से, विशेष रूप से निराशा एवं आहत स्वाभिमान की स्थितियों में ऐसा परिवर्तन अत्यंत प्रभावशाली बन जाता है। श्वेतकेतु की प्रारम्भिक निराशा

[38] तैत्तिरियोनिषद्, २.९.१

[39] ईशोपनिषद्, ७

[40] बृहदारण्यक उपनिषद्, ४.४.२३

[41] मुण्डकोपनिषद्, ३.२.९

उसकी पहचान का शिक्षा जैसे सामाजिक मान्यताओं से उत्पन्न होती है परंतु उद्दालक का परामर्श उसे परम सत्य के साथ एकत्व स्थापित कर अंततः इस मनोरूग्णता से उभरने में सहायता करता है। इस प्रकार का विचार एक अस्थिर एवं परिस्थितियों पर निर्भर आत्म-बोध से एक स्थिर एवं तुलना-रहित आत्म-बोध की ओर गति को इंगित करता है, जो मानसिक दृढ़ता एवं संतुलन का एक प्रमुख आधार है।

4.7 भावनात्मक अतिशयता का समाधान

श्वेतकेतु का प्रसंग भावनात्मक असंतुलन के दो ध्रुवों को दर्शाता है- अत्यधिक दंभ या अभिमान एवं गहन निराशाजनक आत्म-संदेह। परामर्श-आधारित उपचारपद्धति दोनों को समान रूप से संबोधित करता है। अभिमान इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि श्वेतकेतु आंशिक, वैचारिक ज्ञान एवं इसके फलस्वरूप अर्जित सामाजिक प्रतिष्ठा को अधिक महत्व देता है। निराशा तब उत्पन्न होती है जब प्रवाहण द्वारा प्रश्न पूछने से उसका यह कल्पित वैचारिक संरचना खंडित हो जाता है। ये दोनों ही अज्ञान के परिणाम हैं।

परम सत्य अर्थात आत्मज्ञान के लिए औपचारिक शिक्षा की सीमाओं को उजागर करके, उद्दालक अहंकार के आधार को उखाड़ फेंकते हैं। धैर्यपूर्वक आत्मज्ञान एवं अद्वैत का मार्गदर्शन के द्वारा वे श्वेतकेतु को उसकी पहचान समाबंधी अवधारणा बनाने के लिए उसे एक स्थिर आधार प्रदान करते हैं जो बाह्य सत्यापन पर निर्भर नहीं करता है। आधुनिक शद्बावली में यदि कहें तो इस प्रकार का उपचारपद्धति रोगी को अहंकार-आधारित आत्मसम्मान से विमुख कर अस्तित्व-आधारित पहचान की दिशा में उन्मुख करता है। ऐसा दृष्टिकोण सीधे तौर पर अवसाद, चिंता एवं स्व-केंद्रित मनोवृत्ति जैसी स्थितियों से उभरने में सहायक हो सकता है।

4.9 उद्दालक के व्यक्तित्व में परिलक्षित आदर्श परामर्शदाता के गुण

अंततः यह आख्यान उद्दालक को एक आदर्श परामर्शदाता के रूप में स्थापित करता है एवं उनके व्यक्तित्व के द्वारा एक आदर्श परामर्शदाता के गुणों को परिलक्षित करता है:

- **विनम्रता एवं ईमानदारी**: उद्दालक अपनी आत्मा संबंधी अज्ञानता को खुले तौर पर स्वीकार करते हैं, ज्ञान प्राप्ति के लिए विभिन्न व्यक्तियों के पास जाते हैं एवं इस सबमें उनका सामाजिक पद-प्रतिष्ठा आड़े नहीं आता।

- **सहानुभूति**: उद्दालक श्वेतकेतु के द्वारा उन पर दोषारोपण करने की घटना पर अक्रोध भाव से प्रतिक्रिया देते हैं, जिससे परिस्थिति में सुधार का अवसर बन पाता है।
- **उपदेशात्मक कौशल**: उद्दालक श्वेतकेतु में आत्मज्ञान का प्राकट्य करने के लिए उन उपमानों का प्रयोग करते हैं जिनसे वह पूर्वकाल से परिचित है, जैसे- मृत्तिका, पेड़, नदियाँ, लवण इत्यादि जिससे अमूर्त परम सत्य को अनुभव कर पान उसके लिए सुलभ हो जाता है।
- **धैर्य एवं दृढ़ता**: उद्दालक श्वेतकेतु के आत्मज्ञान की समझ विकसित करने की गति कअ आदर करते हैं एवं पौनःपुन्येन विभिन्न विभिन्न प्रकार से विषय को उसके समक्ष रखते हैं।
- **सुविधा से अधिक सत्य को अहमियत**: हालांकि उद्दालक अपने पुत्र का साथ देते हैं उसकी सहायता करते हैं परंतु उसके अहंकार को भी चुनौती देते हैं, उसको बढ़ावा नहीं देते जिससे वह मनोवृत्तियों के बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सके।
- **दूरदर्शिता**: उद्दालक श्वेतकेतु की परामर्श की पद्धति द्वारा मदद केवल उसे पांचाल सभा में हुए उसके अपमान से बाहर आने के लिए ही नहीं अपितु परम पुरुषार्थ अर्थात मोक्ष की प्राप्ति के लिए भि करते हैं।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, उद्दालक नियंत्रण, संज्ञानात्मक पुनर्गठन, मनो-शिक्षा, अस्तित्व संबंधी मार्गदर्शन एवं आध्यात्मिक सलाह का एकीकृत रूप श्वेतकेतु के समक्ष रखते हैं। इसका अंतिम लक्ष्य केवल भावनात्मक समायोजन नहीं अपितु मुक्ति-प्रदाता आत्म-ज्ञान है। एक प्रसंग के अध्ययन के रूप में, श्वेतकेतु की यात्रा दर्शाती है कि परामर्श-आधारित उपचारपद्धति अज्ञानता, घमंड एवं निराशा में निहित मानसिक पीड़ाओं के लिए एक शक्तिशाली उपाय के रूप में कैसे कार्य कर सकता है।

निष्कर्ष

आत्म-साक्षात्कार मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं मानसिक रोगों की रोकथाम में एक अत्यन्त प्रभावी साधन सिद्ध हो सकता है। आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का बोध अस्तित्वगत संकटों को समाप्त कर स्थायी शान्ति प्रदान करता है। मिथ्या भेद-बोध को नष्ट कर अस्तित्व एवं पहचान-संबंधी संकटों को दूर करती है। यह अनुभूति व्यक्ति में गहन आत्मीयता, उद्देश्यबोध एवं अस्तित्वगत अर्थ की भावना को जाग्रत करती है। द्वैत-बोध एवं नश्वर वस्तुओं से आसक्ति की निवृत्ति तनाव, चिंता एवं

©Indira Gandhi National Open University

मनोवृत्तिजन्य अस्थिरताओं को घटाकर, उनके स्थान पर स्थायी शान्ति एवं संतोष को प्रतिस्थापित करती है। यह दृष्टिकोण रामायण, महाभारत एवं भगवद्गीता में भी परिलक्षित होता है, जहाँ संवाद-आधारित आत्मबोध से शोक, अपराधबोध एवं भ्रम का निवारण किया गया है। अज्ञान (अविद्या) के नाश से आत्म-साक्षात्कार आत्म-संशय एवं आन्तरिक द्वन्द्व के मूल कारणों का उन्मूलन करता है, जिससे व्यक्ति स्पष्टता, स्थिरता एवं मानसिक दृढ़ता के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना करने में समर्थ होता है।

इसके साथ ही, वैराग्य की स्थिति (non-attachment) यह सुनिश्चित करती है कि बाह्य परिस्थितियाँ जो सामान्यतः उच्च रक्तचाप, अनिद्रा अथवा मानसिक असंतुलन के कारण बनती हैं, मनोवृत्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव न डाल सकें। किन्तु इस अवस्थाप्राप्ति के लिए अनुशासित साधनाओं की अनिवार्यता है। ध्यान के माध्यम से इन्द्रियों एवं मन का नियन्त्रण व्यक्ति को भावनात्मक सन्तुलन बनाए रखने एवं आकस्मिक प्रतिक्रियाओं से बचने का अभ्यास कराता है। शास्त्रीय उपदेशों का मनन–चिन्तन व्यक्ति में समभावनात्मक दृष्टि का विकास करता है, जिससे वह नकारात्मक प्रभावों से अप्रभावित रहकर मानसिक रूप से अधिक सतर्क एवं सक्रिय बना रहता है। विपत्तिकाल में समत्व (समत्व या समचित्तता) की साधना मनोबल एवं सहनशीलता को सुदृढ़ करती है, जिससे व्यक्ति मनोवैज्ञानिक विक्षोभों के प्रति अल्प संवेदनशील बनता है। इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार की साधना एवं उससे पूर्व की अनुशासनात्मक प्रक्रियाएँ, जैसे- ध्यान, मनोनिग्रह, विचारपरिशीलन एवं वैराग्य, संयुक्त रूप से मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। यह केवल रोग-निवारण ही नहीं करती, बल्कि व्यक्ति एवं समाज, दोनों स्तरों पर सामंजस्य एवं कल्याण की भावना को भी पुष्ट करती है।

यह समन्वित दृष्टि उत्तरवर्ती भारतीय साहित्य, जैसे रामायण एवं महाभारत में भी परिलक्षित होती है, जहाँ इसे मानसिक संतुलन के बनाए रखने के सटीक औषधि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। राम अपने पिता दशरथ के शोक एवं नैतिक संघर्ष के समय, एवं भरत के अपराधबोध एवं विषादकाल में भी, संवादात्मक एवं आत्मबोधपरक उपायों द्वारा उन्हें शान्ति एवं कर्तव्यबोध में स्थिर करते हैं जिससे वे दोनों वैराग्य एवं धर्मानुकूल कर्म के माध्यम से पुनः अपने–अपने धर्मों का पालन करना प्रारंभ करते हैं। इसी प्रकार, कृष्ण, रणभूमि पर मोह, भ्रम एवं जड़ता से ग्रस्त अर्जुन का मार्गदर्शन

करते हैं। गुणों का विश्लेषण कर, आत्मा की अमरता का बोध कराते हुए, उसे स्थिर, विवेकसंगत एवं कर्तव्यपरायण कर्म के लिए प्रेरित करते हैं। इन महाकाव्यों में निरूपित उदाहरण वैदिक प्रतिमान का अवलम्बन करते हैं, जैसा कि श्वेतकेतु के प्रसंग में देखा जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विश्वसनीय गुरु या मार्गदर्शक द्वारा आत्म-साक्षात्कार की दिशा में दी गई शिक्षा विभिन्न मानसिक संकटों में समान रूप से प्रभावी सिद्ध होती है। इस प्रकार आत्मज्ञान-परामर्श भारतीय वैदिक एवं महाकाव्य परम्परा में मानसिक स्वास्थ्य के प्रबन्धन एवं प्रतिबंधात्मक देखरेख का एक परखा हुआ, विश्वसनीय एवं समय-परीक्षित उपाय प्रस्तुत करता है, जो व्यक्ति के आन्तरिक कल्याण को सामाजिक सामंजस्य के साथ संतुलित रखता है।

संदर्भ सूची

- Abhedananda, S. (1959). *Bhagavad Gita: The Divine Message*. VedāntaMath.
- Agarwal, M. M. (1982). *The philosophy of non-attachment*. Motilal Banarsidass.
- C. C. Everett. (1899). The psychology of the Vedanta and Sankhya philosophies. *Journal of the American Oriental Society , 20*, 309-316.
- Cornelissen, M., Misra, G., & Varma, S. (Eds.). (2011). *The science of mind and behavior in Indian psychology*. Pearson.
- Frankl, V. E. (2006). *Man's search for meaning*. Beacon Press.
- Gambhīrānanda, S. (1957). *Eight Upaniṣads with the commentary of Śaṅkarācārya* (Vol. 1). Advaita Ashrama.
- Gambhīrānanda, S. (1957). *Eight Upaniṣads with the commentary of Śaṅkarācārya* (Vol. 2). Advaita Ashrama.
- Hiriyanna, M. (1993). *Outlines of Indian philosophy* (6th ed.). Motilal Banarsidass.
- Jadunath Sinha. (1986). *Indian Psychology* (संस्क. 1). New Delhi: Motilal Banarsidass.
- Jha, G. (1942). *The Chandogyopanishad: A treatise on Vedanta philosophy translated into English with the commentary of Shankara* (U. Mishra, Intro.). Oriental Book Agency.

©Indira Gandhi National Open University

- John G Benjafield. (1992). *Cognition.* New Jersey : Englewood Cliffs, N.J. : Prentice Hall.
- K. S. Sivakumar. (2023). On the concept of 'man' and 'mind' in the philosophy of Advaita Vedanta. *International Journal of Humanities and Social Sciences , 13* (1), 15-18.
- Kaviraj Kunja Lal Bhishagratna. (1907). *An English Translation of The Sushruta Samhita.* Calcutta: Kaviraj Kunja Lal Bhishagratna, Calcutta.
- Lucchetti, G., Koenig, H. G., & Lucchetti, A. L. G. (2021). *Spirituality, religiousness, and mental health: A review of the current scientific evidence*. World Journal of Clinical Cases, 9(26), 7620–7631. https://doi.org/10.12998/wjcc.v9.i26.7620
- M. Hiriyanna. (1993). *Outlines of Indian Philosophy* (6th सं.). New Delhi: Motilal Banarasidass Publishaers Private Limited.
- M.K. Venkatarama Iyer. (1964). *Advaita Vedanta According to Sankara.* New York: Asia Publishing house.
- National Institutes of Health (US); Biological Sciences Curriculum Study. NIH Curriculum Supplement Series [Internet]. Bethesda (MD): National Institutes of Health (US); 2007. Information about Mental Illness and the Brain. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK20369/
- Roy W. Perrett. (2016). *An introduction to Indian Philosophy.* United Knigdom: Cambridge University Press.
- S. Phillips. (2002). *The mind-body problem in three Indian philosophies: Sankara's Advaita Vedanta, Gangesa's Navya Nyaya, and Aurobindo's theistic monism. MiCon 2002 Conference – Mind and Consciousness: Various Approaches.* New Jersey: Infinity Foundation, NJ, USA.
- S. Radhakrishnan. (1923). *Indian philosophy* (1st Edition सं.). London: New York, The Macmillan Company G. Allen & Unwin, Ltd.
- S. Radhakrishnan. (1913). *The Principal Upaniṣads.* (H.D. Lewis, सं.) London: George Allen & Unwin Ltd.

©Indira Gandhi National Open University

- अत्रिदेव. (१८६०). *सुश्रुतसंहिता.* वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास .
- आर एन द्विवेदी. (२००२). *भारतीय दर्शन में मन.* महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ , Philosophy. वाराणसी : महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ .
- *ईशादि नौ उपनिषद्.* (२०१७). गोरखपुर: गीताप्रेस.
- *छन्दोग्य उपनिषद्.* (१९९५). गोरखपुर: गीताप्रेस .
- डॉ. अभिमन्यु. (२०१९). *वेदांतविमर्श.* नई दिल्ली: परीमल प्रकाशन.
- डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'. (२०१७). *संस्कृत साहित्य का इतिहास.* वाराणसी: चौखम्बा भारती अकादमी.
- डॉ. सत्यनारायण श्रीवास्तव्य. (२०२४). *वेदांतसार.* नई दिल्ली: चौखम्बा प्रकाशन.
- बलदेव उपाध्याय. (१९४८). *संस्कृत साहित्य का इतिहास.* काशी: शारदा मंदिर.
- *श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण.* गोरखपुर: गीताप्रेस.

अंतरजालीय स्रोत

- https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/
- https://books.google.co.in/
- https://archive.org/
- https://shodhganga.inflibnet.ac.in/
- https://www.jstor.org/
- https://www.academia.edu/
- https://www.researchgate.net/
- https://www.cambridge.org/
- https://philpapers.org/

©Indira Gandhi National Open University

- https://www.nimh.nih.gov/

©Indira Gandhi National Open University